International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 04, No. 01(III), January - March, 2022, pp.108-112

भारत में प्रशासनिक सुधार और समाज

डॉ. राजेंद्र सिंह खीची*

सार

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज को व्यवस्थित एवं सुसंगठित रखने के लिए उसपर प्रशासनिक व्यवस्थाएं लागू की जाती है, कुछ नियम बनाए जाते हैं। ताकि समाज में रहने वाले नागरिक उन नियमों का पालन करें। जिससे की सामाजिक व्यवस्था नियंत्रित रहे। इसके लिए चाहे भय का नियंत्रण नियम उपयोग में लिया जाए या फिर बल का नियंत्रण। भारत में समय–समय पर प्रशासनिक व्यवस्था की नियमावली का निर्माण किया गया व वांछित सकारात्मक संशोधन भी किए गए। इसके साथ ही इन प्रशासनिक व्यवस्थाओं में विशेषज्ञों द्वारा सुधार भी किए गए। इन सुधारों का समाज पर क्या असर आया व क्या आ सकता है तथा यह समाज के लिए कितने उपयोगी हैं ? इस आलेख में इसी का अध्ययन किया गया है।

शब्दकोश: *ऑपरेशन एंड मेंटिनेस, प्रतिवेदन स्वायत्तता, प्रत्यायोजन सचिवालय, सार्वजनिक उपक्रम, संथानम, लोक सेवक, लोक न्यायाधिकरण नियामकीय, मानव संपदा, स्थानीय अभीशासन, सामाजिक पूंजी, संगठित समाज, संस्थागत, प्रदत्त शक्तियां, समग्र, संगठित अपराध, सापेक्षित प्रघटना, केन्द्रीय सतर्कता आयोग।*

प्रस्तावना

परिवर्तन जहां प्रकृति का नियम माना जाता है वहीं कई क्षेत्रों में समय–समय पर परिवर्तन जरूरत भी बन जाता है बस यही वांछनीय है कि वह परिवर्तन सकारात्मक हो। किसी भी संस्थान अथवा समाज को सुचारू व व्यवस्थित रूप से संचालित करने हेतु उस पर कुछ नियम इस्तेमाल किए जाते हैं। जिससे उसे सुचारू रूप से चलाया जा सके।

यदि हम प्रशासनिक क्षेत्र की बात करें तो उसका प्रभावी क्रियान्वयन वस्तु, परिस्थिति, समय व सामाजिक परिस्थितियों पर अत्यधिक निर्भर करता है। जैसे–जैसे इसमें परिवर्तन आता है वैसे–वैसे इन प्रशासनिक क्षेत्रों में भी परिवर्तन की आवश्यकता होती है। घटित घटनाओं से सीख, समय की मांग व परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों के कारण प्रशासनिक क्षेत्र में सुधार ही इस क्षेत्र एवं सामाजिक व्यवस्था को मजबूती एवं सुदृढ़ता प्रदान करता है।

भारत में भी समय–समय पर प्रशासनिक सुधार होते रहे हैं। किसी भी देश के लिए उसका प्रशासनिक क्षेत्र उसके आधार स्तंभों में से एक माना जा सकता है क्योंकि किसी भी देश की सुदृढ़ता उसके प्रशासनिक क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भर करती है। यही कारण रहा है कि भारत देश में प्रशासनिक सुधार एक निश्चित समय अंतराल पश्चात होते रहे हैं।

किसी भी देश की स्थापना के समय ही वहां की व्यवस्थाओं को सुचारू एवं व्यवस्थित रखने के लिए वहां प्रशासनिक क्षेत्र की नींव पड़ ही जाती है। वैसे ही भारत देश में भी उसकी प्रशासनिक व्यवस्था प्राचीन समय से ही चली आ रही है एवं उसमें भी समय–समय पर सुधार होते रहे हैं।

* सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

भारत में प्रशासनिक सुधारों को मुख्य रूप से दो भागों में बांट, इसका अध्ययन किया जा सकता है।

- स्वतंत्रता पूर्व प्रशासनिक सुधार।
- स्वतंत्रता पश्चात प्रशासनिक सुधार।

स्वतंत्रता पूर्व सन् 1947 तक भारत पर अंग्रेजों का राज रहा। उस समय भारत के अतिरिक्त भी अंग्रेजों का कई देशों पर राज रहा था। इसके मुख्य कारणों में से एक यह भी माना जाता रहा है कि अंग्रेजों द्वारा संचालित व स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था बहुत ही प्रभावी हुआ करती थी। प्रशासनिक क्षेत्र में अंग्रेजों की खूबी भी यही मानी जाती रही थी कि वे इस क्षेत्र में समय–समय पर समीक्षा कर इसका क्रियान्वयन करते रहते थे जिससे की व्यवस्था लचर ना हो।

भारत पर राज की समयावधि में भी अंग्रेजों ने अपनी जरूरतों व सुविधानुसार प्रशासनिक सुधार किए थे। उस समय के प्रशासनिक सुधारों में मुख्यत् सन् 1886 में एचिशन आयोग, इस्ली आयोग एवं ली आयोग के प्रतिवेदनों को मुख्यरूप से सम्मिलित किया जा सकता है।

लंबे समय के संघर्ष के पश्चात सन् 1947 में आजादी प्राप्त करने तक भारत अपनी आर्थिक स्थिति काफी कमजोर बना चुका था। आजादी के समय भारत पर विभाजन के भी दुष्परिणाम आने लगे थे। ऐसे समय में प्रशासनिक क्षेत्र में अधिकारियों की न्यून उपलब्धता से निपटने के लिए सन् 1947 में वाजपेई समिति, असैनिक व्यय कम करने एवं गैर योजना व्यय को समाप्त करने हेतु सुझाव देने के लिए सन् 1948 में उद्योगपति कस्तूरबा भाईलाल समिति बनाई गई, तत्पश्चात सन् 1949 में केंद्रीय सचिवालय के संगठनात्मक ढांचे में सुधार हेतु आंयगर समिति की स्थापना की गई। यही वह समिति थी जिसने ऑपरेशन एंड मेंटेनेंस की स्थापना का सुझाव दिया था।

प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार के लिए भारत देश में विभिन्न समितियों का गठन होता रहा है इन समितियों के सुझाव एवं अनुशंसाओं के विभिन्न परिणाम आते रहे हैं लेकिन कई मर्तबा ऐसा भी होता है जो काम कई विशेषज्ञ मिलकर भी नहीं कर पाते वह उस क्षेत्र में निपुण एक व्यक्ति कर जाता है।

भारत में लोक प्रशासन व लोग उद्यमों के कुशल संचालन के संदर्भ में पूर्व आईपीएस अधिकारी एडी गोरवाला द्वारा दिया गया प्रतिवेदन भी भारतीय प्रशासनिक सुधारों के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह माना जाता रहा है कि कोई भी व्यक्ति यदि अपने गृह राज्य में कार्यरत है तो उसे अपने निजी अथवा सामाजिक संबंधों के कारण अपना समय विभाजन करना पड़ता है। कई अवसर ऐसे भी आ जाते हैं कि वह प्राथमिकता किसे दें? इसी के मद्देनजर अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों को अपने गृह राज्य में नियुक्ति नहीं देने का महत्वपूर्ण सुझाव गोरवाला द्वारा प्रदान किया गया था।

भारतीय प्रशासनिक सुधार में अमेरिकी विद्वान पॉल एच. ऐप्पलबी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय प्रशासनिक सुधारों के क्षेत्र में पाल एच अप्पलबी के मुख्य रूप से दो प्रकार के दस्तावेज हैं ।

- **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया –** इसके अंतर्गत उन्होंने भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में राज्यों को अधिक स्वतंत्रता नहीं देने, इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की स्थापना करने, लाइन तथा स्टाफ में अंतर स्पष्ट करने एवं O & M की स्थापना करने का सुझाव दिया था।
- पाल एच एप्पलबी ने सन् 1956 में दूसरा प्रतिवेदन ''रिपोर्ट ऑफ एग्जामिनेशन इन इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम'' पब्लिक इंटरप्राइजेज विषय पर दिया। इस प्रतिवेदन में उन्होंने लोक नियमों की स्वतंत्रता में वृद्धि करने, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा कम हस्तक्षेप किए जाने, प्रत्यायोजन करने, शीघ्र निपटान हेतु सचिवालय में अधिकारी नियुक्त करने, लेखा परीक्षण पद्धति द्वारा सार्वजनिक उपक्रम बदलने आदि के सुझाव दिए थे।

भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाने हेतु सुझाव के लिए सन् 1962 में एम. संथानम की अध्यक्षता वाली समिति बनी। इस समिति ने सन् 1964 में अपना महत्वपूर्ण प्रतिवेदन दिया। इसी की अनुशंसा के परिणामस्वरूप केंद्रीय जांच ब्यूरो व केंद्रीय सतर्कता आयोग जैसी संस्थानों की स्थापना हुई।

जब भारत में प्रशासनिक सुधारों का अध्ययन हो रहा हो तो भारत में प्रशासनिक सुधारों का आधार माने जाने वाले प्रथम एवं द्वितीय प्रशासनिक सुधारों का अध्ययन किया जाना अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में सन् 1966 में प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन हुआ। इसी आयोग ने केंद्र, राज्य व जिला प्रशासन को पुनर्गठित करने की निम्नलिखित अनुशंसा की ।[1]

- लोक सेवकों के विरुद्ध जन शिकायत निराकरण हेतु लोकपाल एवं लोकायुक्त की स्थापना की जाए। लोकपाल संघ एवं राज्य सरकार के मंत्रियों और सचिवों के विरुद्ध जांच करें जबकि लोकायुक्त संघ एवं राज्य स्तर पर अलग–अलग हो जो सचिव स्तर से निम्न कार्मिकों के विरुद्ध जन शिकायतों की जांच करें।
- मंत्री परिषद का आकार सुनिश्चित हो जिसमें अधिकतम 45 मंत्री हो।
- सरकारी कार्मिकों को हड़ताल का अधिकार नहीं हो लेकिन उनकी शिकायत निवारण हेतु एक संयुक्त विचार परिषद और एक लोक न्यायाधिकरण नियुक्त हो ।
- लोक उद्यम में सरकारी अधिकारियों को भेजने की प्रथा समाप्त की जाए।
- जिलाधीश के कार्यों को दो भागों में विभाजित किया जाए नियामकीय एवं विकासात्मक। विकासात्मक कार्य जिलाधीश से लेकर जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को देने की अनुशंसा आयोग ने की थी।
- प्रशासनिक सुधार एवं प्रगतियों के अध्ययन का कार्य स्वायत्तता प्राप्त व्यावसायिक संस्थाओं के हाथों में सौंपा जाए।

कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में सन् 2005 में दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन हुआ। इस आयोग के अन्य सदस्य डॉ. जयप्रकाश नारायण, श्री रामचंद्रन, एच. कॉलरों एवं डॉ. ए. पी. मुखर्जी थे। इस आयोग ने निम्नलिखित कुल पन्द्रह प्रतिवेदन प्रस्तुत किए ।[2]

- सूचना का अधिकार : उत्तम शासन के लिए प्रमुख कुंजी
- मानव संपदा का व्यापक विस्तार : हकदारिया और अभिशासन रू एक मामला
- संकट प्रबंधन : निराशा से आशा की ओर
- शासन में नैतिकता
- लोक व्यवस्था : प्रत्येक के लिए न्याय सभी के लिए शांति
- स्थानीय अभिषासन : भविष्य की ओर प्रेरणादायक यात्रा
- संघर्ष समाधान हेतु क्षमता निर्माण : वैमनस्य से संयोजन
- आतंकवाद से लड़ाई : न्याय संगत ढंग से बचाव
- सामाजिक पूंजी : एक साझा नियति
- कार्मिक प्रशासन की स्वच्छता : नई ऊंचाइयों की प्राप्ति
- ई गवर्नेंस को प्रोत्साहन : भविष्य की स्मार्ट राह
- नागरिक केंद्रित प्रशासन : अभीशासन का हृदय
- सरकार की संगठनात्मक संरचना
- वित्तीय प्रबंध : व्यवस्थाओं का सुदृढ़ीकरण
- राज्य एवं जिला प्रशासन

पूर्व भारतीय राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी की अध्यक्षता में एक मंत्रिमंडल समूह का गठन किया गया। जिसका कार्य द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसा लागू करने एवं इस संदर्भ में दिशा निर्देश देना था। प्रशासनिक सुधारों के संदर्भ में इस आयोग ने महत्वपूर्ण अनुशंसा की। जिस के लागू होने पर शासन में उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही का विकसित हो सकती है।[3] लेकिन आयोग की अनुशंसा के लगभग 12 वर्ष पश्चात भी इसका अपेक्षित क्रियान्वयन ना हो पाना दुर्भाग्यपूर्ण है।

सामाजिक प्रभाव

सामाजिक समस्याओं का निपटारा वहां की प्रशासनिक व्यवस्था पर अत्यधिक निर्भर करता है। प्रशासनिक क्षेत्र में यदि किसी अधिकारी को कोई जिम्मेदारी दी गई है तो उसका उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही का सुनिश्चित होना भी आवश्यक है। यदि कोई अधिकारी अपनी जिम्मेदारियों से विमख होता है तो वह सामाजिक असंतुलन उत्पन्न होने की स्थिति को मौका देता है। जिससे सामाजिक व्यवस्था को क्षति पहुंच सकती है।

प्रत्येक समाज संगठित समाज है। चाहे उसमें संगठन का अंश भिन्न क्यों ना हो। आधुनिक समाजों को संगठित समाज की संज्ञा दी गई है। हमारा जन्म संगठनों में होता है, संगठन ही हमें शिक्षित करते हैं तथा संगठनों में कार्य करने में ही हमारा अधिकांश जीवन व्यतीत होता है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमारा जन्म, विकास व मृत्यु संगठनों में होती है। संगठित समूह की गतिविधियां संस्थागत रूप ग्रहण कर लेती है तथा समाज में शक्ति एवं सत्ता के वितरण तथा संचालन में संस्थागत संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।[4]

प्रदत्त शक्तियां ग्रहण किए प्रशासनिक अधिकारियों पर ही जनता को भरोसा होता है कि वे समाज में फैल रही असामाजिक गतिविधियों पर अंकुश लगाकर नियंत्रण पाएं। कोई भी समाज ऐसा नहीं पाया जाता कि उसमें सारी गतिविधियां नियमानुसार ही होती हो या ऐसा समाज भी नहीं मिलता जहां सारे कार्य ही असामाजिक होते हों । लेकिन यह निश्चित है कि हर समाज में कुछ ऐसे लोग होते हैं जो अपने असामाजिक कार्यों यानी नियम विरुद्ध कार्यों से समाज को विघटन की ओर ले जाते हैं। हर समाज में कुछ न कुछ असामाजिक गतिविधियां होती रहती है, जिससे सामाजिक विघटन की स्थितियां उत्पन्न हो जाती है। जिनपर प्रशासन के माध्यम से ही नियंत्रण पाना संभव है।

सामाजिक विघटन वह अवस्था है, जिसमें समाज अथवा किसी अन्य समग्र की विभिन्न इकाइयों में परस्पर सामंजस्य समाप्त हो जाता है तथा सामाजिक संगठन को बनाए रखने वाले सामाजिक संबंध या तो शिथिल हो जाते हैं या पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं। सामाजिक विघटन की स्थिति में समाज के सदस्यों में मतैक्य अथवा सामाजिक एकीकरण का अभाव तथा असंतुलन पाया जाता है।[5]

जेब काटना, लूटमार, सेंधमारी, तस्करी, मादक पदार्थों की तस्करी, वेश्यावृत्ति, जुआ आदि कुछ ऐसे अपराध हैं जिनमें कुछ अपराधियों का टीम के रूप में काम करना सम्मिलित है। इन अपराधों के करने का उद्देश्य लाभ कमाना होता है। सांख्यिक रूप में संगठित अपराध में बड़े अनुपात में अपराधी शामिल नहीं होते, लेकिन समाज के लिए यह अपराध एक गंभीर समस्या समझी जाती है ।[6]

ऐसा कोई भी समाज नहीं जिसमें मानकों की पूर्ण अनुरूपता पाई जाती हो । ऐसा भी कोई समाज नहीं जिसमें मानकों का पूर्ण उल्लंघन होता हो या मानक हीनता की अवस्था पाई जाती है। अपराध सभी प्रकार के समाजों में पाया जाता है। अतः हम देखते हैं कि समाज में अपराध, बाल अपराध और वेश्यावृत्ति आदि की समस्याएं पाई जाती है। फिर भी, एक समाज में जिसे एक सामाजिक विचलन समझा जाता हो उसे अन्य समाजों में या तो एक सामान्य व्यवहार माना जाता है या फिर बहुत अधिक विघटनकारी क्रिया नहीं माना जाता । अतीत में जाति, परिवार और विवाह इत्यादि में संबंधित मानकों के उल्लंघन को एक विघटनकारी क्रिया माना जाता था क्योंकि दंड और बहिष्कार द्वारा उल्लंघन को रोका जाता था । परंतु आजकल ऐसे उल्लंघनों के कारण गंभीर दंड या आलोचनाएं नहीं की जाती है। अतः सामाजिक विघटन एक सापेक्षिक प्रघटना है और इसका रूप–स्वरूप, स्थान और समय के संदर्भ में परिवर्तित होता रहता है ।[7]

पब्लिक डील में प्रशासनिक क्षेत्र में से पुलिस जनता से सीधे संपर्क में रहती है । अपराधियों में पुलिस का भय होना अत्यंत आवश्यक है । जिससे कि कोई भी अपराधी अपराध करने से पूर्व पुलिस के भय से भयभीत हो, कुकृत्य करने से घबराए । इसके लिए चाहिए कि इस क्षेत्र के अधिकारियों को प्रदत्त शक्तियों की समय–समय पर समीक्षा हो व जरूरत महसूस होने पर उनमें सुधार भी हो ।

भारतीय पुलिस अधिनियम (Indian Police Act) 1861 के बाद 1902 में ए. एच. एल. फ्रेजर की अध्यक्षता में द्वितीय पुलिस आयोग का गठन किया गया । रिबेरो कमेटी (1998) पदमना भैया कमेटी (2000) एवं सोली सोराबजी पुलिस एक्ट ड्राफ्ट कमिटी (PASC) 2005 के रूप में इस दिशा में प्रयास किए गए । पुनः अप्रैल 2013 में सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस सुधारों की धीमी गति के लिए सरकार को चेतावनी दी।[8]

भारतीय प्रशासनिक सुधारों द्वारा केंद्रीय जांच ब्यूरो व केंद्रीय सतर्कता आयोग का गठन इन अधिकारियों एवं भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाने में बेहद ही कारगर है। किसी भी अधिकारी के पास शक्तियां तो भरपूर है पर उन पर कोई नियंत्रण नहीं तो ऐसी स्थिति में अधिकारी द्वारा इन शक्तियों का दुरुपयोग होने की पूर्ण संभावना रहती है। इन परिस्थितियों में एक साधारण एवं शक्तिहीन व्यक्ति का समाज में जीवन यापन करना दुभर हो सकता है। ऐसे में इन एजेंसियों का गठन सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कदम है।

पूर्व आईपीएस अधिकारी एडी गोरवाला द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन भी सामाजिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी कहा जा सकता है। यदि किसी प्रशासनिक अधिकारी को उसके गृह जिले में पदस्थापित कर दिया तो उसके कार्य–समय में विभाजन की संभावनाओं के अतिरिक्त यह भी पूर्ण संभावनाएं बनी रहती है कि गृह जिला होने के कारण वह अधिकारी अपने रिश्तेदारों या पहचान वालों के पक्ष में अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर सकता है अथवा किसी कार्यवाही को प्रभावित भी कर सकता है। ऐसे में समाज में असुरक्षा का भाव उत्पन्न होने की पूर्ण संभावना रहती है। साथ ही उस अधिकारी के संबंधी अथवा रिश्तेदार साधारण जनता पर अधिकारी के रिश्तेदार होने की धौंस दिखाकर असामाजिक कार्य करने का प्रयास कर सकते हैं। अतः ऐसी सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच यह प्रतिवेदन अपनी उपयोगिता साबित करता है।

यह प्रशासनिक सुधार ही है जिससे कि समाज में पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन व्यवस्थित रहता है। सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव भी समय–समय पर प्रशासनिक सुधार का मुख्य कारण रहा है। यदि यह कहा जाए कि प्रशासनिक सुधार और सामाजिक व्यवस्था एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, लोक प्रशासन, टी एम एच, 2016, पेज 222
2. www-darpag-gov
3. मोहित भट्टाचार्य, लोक प्रशासन के नवीन आयाम, 2009, पेज 312
4. डॉ. महाजन धर्मवीर, डॉ. महाजन कमलेश, ‘अपराधशास्त्र’ विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 8–9
5. वही, पृष्ठ संख्या – 12
6. आहूजा राम, आहूजा मुकेश, ‘विवेचनात्मक अपराधशास्त्र’ रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 174
7. शर्मा के एल, ‘भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन’ रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 216
8. शर्मा जी एल, ‘‘सामाजिक मुद्दे’’ रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, नई दिल्ली, बेंगलुरु, हैदराबाद, गुवाहाटी, कोलकाता, पृष्ठ संख्या – 324

❖◆❖